DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal **(2012) , 01, 42-49**

dfri; jk"V0;kih leL;kvks ds lek/kku esa oSfnd /keZ dh fpUru nf"V

शिखा एवं रीना बाजपेयी

सारांश

संवेदना को परिष्कृत करने वाली विधा का नाम धर्म है। वैदिक साहित्य के अनुसार मनुष्य जीवन को सफल तथा समाज को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने की जो सर्वोच्च आचार संहिता है उसे धर्म के नाम से जाना जाता है। धर्मवेत्ता वह है जो सर्वश्रेष्ठ मानवीय गुणों से सुसंपन्न है तथा समस्त मानव जाति को एक परमात्मा की संतान मानता है। जो तत्व प्राणियों द्वारा धारण किया जाता है तथा इसके द्वारा वह प्राणियों का पालन–पोषण करता हुआ उन्हें सुख–शांति से आप्यायित करता है व अवलंबन देता है उसे धर्म कहते हैं। इस प्रकार सारी विश्व मानवता के लिए धर्म एक ही हुआ, जिसके मार्गदर्शन, संरक्षण में जिसकी छाया तले सभी प्रकार की विचारधारायें समान रूप से पोषण पाती रहें, पारस्परिक कोई विग्रह न हो, वह धर्म शाश्वत है व एक ही है। देवसंस्कृति इस संबंध में हमारा मार्गदर्शन आज की साम्प्रदायिक विद्वेष भरी परिस्थितियों में समुचित रीति–नीति से करती हुई कहती है कि वही धर्म कहलाने योग्य है जो सहिष्णु हो, जिसकी मर्यादा–अनुशासन का अवलम्बन सब लें, जो नीतिमत्ता पर आधारित हो तथा जो सबको समान संरक्षण प्रदान करती हो। परंतु आज धर्म का यह वास्तविक स्वरूप विलुप्त हो गया है, धर्म मात्र कर्मकाण्ड बनकर रह गया है। धर्म के नाम पर सर्वत्र अंधविश्वास फैला हुआ है। धर्म के वास्तविक स्वरूप से दूर होने के कारण आज समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। धार्मिक कट्टरता के कारण साम्प्रदायिकता ने जन्म लिया है। इसके अतिरिक्त जातिवाद, क्षेत्रवाद जैसी समस्याएँ समाज को विकृत करती चली जा रही हैं। आतंकवाद का दंश तो भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व झेलने के लिए विवश है। इन समस्याओं के समाधान में वैदिक धर्म की महती भूमिका है। यदि मानव मात्र धर्म के वास्तविक स्वरूप (वैदिक धर्म) को अपने जीवन में अंगीकार कर ले तो उपरोक्त समस्याओं से निजात पा सकना संभव है। वैदिक ग्रंथों में धार्मिक सद्भाव एवं धार्मिक सामंजस्य का उल्लेख प्राप्त होता है। धार्मिक सद्भाव का तात्पर्य है अन्य धर्म सम्प्रदायों को भी अपने धर्म के समान आदर व प्रेम की भावना को प्रश्रय देना। इस भावना के अवलंबन में सम्प्रदायवाद की समस्या का समाधान निहित है। धार्मिक सामंजस्य का तात्पर्य है व्यक्ति व व्यक्ति के मध्य संकीर्ण, स्वार्थपरक मनोवृत्तियों व मनोभावों के स्थान पर ''आत्मवत् सर्वभूतेषु'' व ''वसुधैव कुटुम्वकम्'' की भावना का विकास अर्थात् जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने समान और संपूर्ण वसुधा को अपने परिवार के समान समझेगा तो समस्त प्रकार के विद्वेष स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे परिणामतः जातिवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद जैसी समस्याओं का निर्मूलन संभव हो सकेगा। इस प्रकार वैदिक धर्म सामाजिक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

कूट शब्द : वैदिक धर्म, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद।

धर्म मानवीय संवेदना का विस्तार करता है, यह हमारी चेतना को विकसित करने का एक माध्यम है। धर्म हमें सही प्रकार से जीवन जीना सिखाता है। हमारी संस्कृति में धर्माचरण की शुरुआत प्राचीन समय में वैदिक काल से हो गई थी। उस समय वैदिक धर्म का आचरण मुख्यतः सदाचरण, एकता, सामंजस्य, न्याय, आस्था, निःस्वार्थ कर्म पर बल देने के कारण मनुष्य समाज में स्वस्थ एवं सकारात्मक वातावरण था। लेकिन आज धर्म का वास्तविक स्वरूप विलुप्त हो गया है। धर्म को कुछ कर्मकाण्डों का पर्याय भर मान लिया गया है। मनुष्य का वैचारिक दृष्टिकोण संकीर्ण हो गया है और संवेदना मर गयी है। इसी कारण आज राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में अनेकों समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

आज की परिस्थिति में मानव समाज में अलग–अलग देशों में विभिन्न तरह के धर्मों का प्रचलन हैं और उनके अपने नीति–नियम है। इन धर्मों में कुछ ऐसे भी नियम हैं जो अवांछनीय हैं और जिनसे किसी का हित साधन न होकर नुकसान ही होता है। कुछ धर्मों के अनुयायी अपने धर्म के प्रति इतने कट्टर होते हैं कि दूसरों के धर्मों को हेय दृष्टि से देखते हैं और अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। इस तरह आज की परिस्थिति में विभिन्न धर्मों में आपस में मतभेद व स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की भावना निहित है और यह भावना निश्चित रूप से धर्मों की नहीं बल्कि उनका पालन करने वाले अनुयायियों की है। इसी कारण राष्ट्र में सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद आदि का बोलबाला हो गया है। ये ऐसी राष्ट्रव्यापी समस्याएँ हैं जिनसे राष्ट्र का कभी भी हित साधन नहीं हो सकता और जिनके कारण राष्ट्र की प्रगति भी कभी नहीं हो सकती। अतः इन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ना अति आवश्यक है। इन

समस्याओं का समाधान वैदिक धर्म के महत्वपूर्ण सूत्रों में निहित है।

/ke

मानवीय संवेदना को परिष्कृत करने की विधा का एक नाम धर्म है। धर्म शब्द धृञ् धातु को मन् प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है (सिद्धांत कौमुदी–1/139)। संस्कृत व्याकरणविद् धर्म शब्द की व्युत्पत्ति कईं प्रकार से करते हैं। जैसे–1. **/kkj;r ykdde bfr /ke%**, 2. **f/k;r ykdk·uu bfr /ke%** 3. **/kjfr ykdde bfr /ke%**। इन व्युत्पत्तियों के अनुसार जो तत्व प्राणियों द्वारा धारण किया जाता है तथा इसके द्वारा वह प्राणियों का पालन–पोषण करता हुआ उन्हें सुख–शांति से आप्यायित करता है व अवलंबन देता है उसे धर्म कहते हैं (कुलश्रेष्ठ, 2008)।

नैतिक मूल्यों का आचरण धर्म है। धर्म वह पवित्र अनुष्ठान है जिससे चेतना का शुद्धिकरण होता है। यह मनुष्य में मानवीय गुणों के विकास की सम्भावना का सूत्र है, सार्वभौम चेतना का सत्संकल्प है। धर्म एक या एक से अधिक पारलौकिक शक्ति में विश्वास और उसके साथ जुड़े रीति–रिवाज, परंपरा, पूजा–पद्धति एवं दर्शन का समूह है। इस तरह जीवन में हमें जो धारण करना चाहिए वह धर्म है।

वास्तव में सभी मनुष्यों का धर्म एक है। धर्म उस शाश्वत सत्य को कहते हैं जो व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके मानव को मानव से जोड़े। इसलिए धर्म को मानव संवेदना को परिष्कृत करने की प्रक्रिया कहते हैं क्योंकि मानव संवेदना का परिष्कार होने पर ही व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होगा और विभिन्न सम्प्रदायों के मनुष्य आपस में एकजुट होकर मानव धर्म को समझ सकेंगे।

महाराज मनु ने मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये हैं–

> **/kfr% {kek nek·Lr;| 'kkpfefUn;fuxg%A**
> **/khfo|k] lR;eØk/kk n'kd /kety{k.keA**

(मनुस्मृति 6/91)

अर्थात् धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य व अक्रोध– ये दस लक्षण धर्म की पहचान हैं। धृति अर्थात् हमेशा धैर्य रखना और सुख–दुःख, लाभ–हानि, मान–अपमान आदि में भी धर्म (कर्त्तव्यपालन) को न त्यागना। क्षमा अर्थात् अपराधी व्यक्तियों के प्रति भी मन में दया का भाव रखना, उन पर क्रोध न करना और बदला लेने के विचार को छोड़ देना। दम अर्थात् मन को सदा धर्म में प्रवृत्त रखते हुए अधर्म की ओर जाने वाली मन की प्रवृत्ति को रोकना। अस्तेय अर्थात् चोरी न करना या बिना आज्ञा से परपदार्थ को ग्रहण न करना। शौच अर्थात् राग–द्वेष–मोह आदि के त्याग से आन्तरिक शरीर की तथा पानी से बाह्य शरीर की शुद्धि रखना। इन्द्रियनिग्रह अर्थात् अधर्माचरणों करने से इन्द्रियों को रोकना तथा उन्हें सदा धर्म की ओर प्रवृत्त करना। धी अर्थात् बुद्धिनाशक पदार्थों, दुष्टों का संग, आलस्य, प्रमाद आदि को छोड़ कर श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन, सत्पुरुषों का संग, योगाभ्यास, धर्माचरण, ब्रह्मचर्य आदि शुभकर्मों से बुद्धि का विकास करना। विद्या अर्थात् पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान को ग्रहण कर उसका यथा योग्य उपयोग करना। सत्य अर्थात् मन, वचन, कर्म से सत्य बोलना या जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही समझना, बोलना और करना सत्य कहलाता है। अक्रोध अर्थात् क्रोधादि दोषों को छोड़कर शान्ति को धारण करना।

महाराज मनु द्वारा दिए गए धर्म के इन दस लक्षणों को किसी भी सम्प्रदाय या मत को मानने वाले व्यक्ति अपना सकते हैं क्योंकि धर्म के ये लक्षण सभी मानव जाति के लिए हितकर व सार्वभौम हैं। महाराज मनु नीति, नियम और विधान के निर्माता थे, उन्होंने धर्म के इन दस लक्षणों की सृष्टि इसी उद्देश्य से की ताकि समस्त मानव जाति इसे एकमत से स्वीकार कर सके, परन्तु इस विषय में उन्होंने वेद को परम–प्रमाण बताया। अतः वेद ही वह माध्यम हैं जिसके द्वारा संसार में समस्त मानव जाति के हित को ध्यान में रखते हुए सार्वभौम धर्म की स्थापना की गई। सार्वभौम धर्म वह है– जो ईश्वर का दिया आदेश हो, सृष्टि के नियमों के अनुकूल हो, सब देश, काल और मानवता के लिए हो तथा वह मानवनिर्मित न हो– इन सारी कसौटियों पर केवल वैदिक धर्म ही खरा उतरता है। अतः वही सार्वभौम धर्म है।

ofnd /ke

वैदिक धर्म वेदों पर आधारित है। वैदिक धर्म को ही सनातन धर्म कहा गया है। वैदिक धर्म सभ्यता का मूल धर्म है, जो भारतीय उपमहाद्वीप और मध्य एशिया में हजारों वर्षों से प्रचलित है। आधुनिक सनातन धर्म या हिन्दू धर्म का मूल आधार इसी वैदिक धर्म पर आधारित है। हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार– वेदों के मन्त्र ईश्वरीय प्रेरणा से ऋषियों द्वारा प्रकट किए गए है। इसलिए वेदों को श्रुति (अर्थात् जो सुना गया) कहा जाता है जबकि रामायण आदि हिन्दू धर्म ग्रन्थों को स्मृति (अर्थात् जो मानव स्मृति पर आधारित है) कहा जाता है। वेदों को अपौरुषेय (अर्थात् जो पुरुष द्वारा कृत नहीं है) भी कहा जाता है।

वैदिक धर्म में आत्मा को ईश्वर का अंश माना गया है और यह सभी जीवात्माओं में निहित है, ऐसा स्वीकारा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण जगत् के सभी

जीवधारियों व प्राणियों में ईश्वरीय अंश आत्मा के रूप में विराजमान है। अतः किसी भी प्राणी को कष्ट देने पर ईश्वर को कष्ट पहुँचता है। अतः दूसरों को कष्ट देने व सताने वाले सभी कर्म पापश्रेणी में रखे गए और दूसरों को विकसित करने, समृद्ध करने व सेवा करने वाले समस्त कर्मों को पुण्य की श्रेणी में रखा गया।

वैदिक धर्म संपूर्ण पृथ्वी को अपना परिवार मानता है (ऋग्वेद– 1/62/2)। यदि मनुष्य संपूर्ण पृथ्वी के मनुष्यों को अपना भाई–बन्धु समझेगा, तब वह कैसे सम्प्रदाय, क्षेत्र, जाति आदि के नाम पर उनका तिरस्कार कर सकता है या उनका अहित सोच सकता है।

ऋग्वेद में '**vrk /kekf.k /kkj;u**' के रूप में धर्म के धारण करने का उल्लेख मिलता है (ऋग्वेद– 1/22/18)। तैत्तिरीय उपनिषद् एवं छांदोग्य उपनिषद् में नैतिक आदर्श या सदाचार को धर्म कहा गया है (तैत्तिरीय उपनिषद्–1/11/1; छांदोग्य उपनिषद्–2/23/1)। वृहदारण्यक उपनिषद् में धर्म शब्द का प्रयोग आध्यात्मिक, नैतिक एवं भौतिक जगत् के संचालन के अर्थ में किया गया है। धर्म के संबंध में कहा गया है कि धर्म सब भूतों का मधु है और सब वस्तुएँ इस धर्म का मधु हैं और जो इस धर्म में प्रकाशमय अमृतमय पुरूष है वह आत्मा ही है, यह अनश्वर अमृत है, यह ब्रह्म है, यह सर्वमय है (वृहदारण्यक उपनिषद्–2/5/11)। वृहदारण्यक उपनिषद् में धर्म को सत्य व सत्य को धर्म के रूप में विवेचित करते हुए सत्य बोलने के लिए कहा गया है (वृहदारण्यक उपनिषद्–1/4/14)। सत्य को धर्म के रूप में मानते हुए ईशावस्योपनिषद् में कहा गया है कि ऋषियों ने सत्य को धर्म के रूप में ही देखा है (ईशावस्योपनिषद्–15)। तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है कि यह संसार धर्म पर ही अधिष्ठित है (तैत्तिरीय आरण्य–10/63)।

वैदिक धर्म में अनेकों देवताओं की उपासना की गई है परन्तु इन सभी को एक ही परमेश्वर का रूप माना गया है। यह उनकी धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक है। वेदों में जिन देवताओं की स्तुति में बहुत से मंत्र लिखे गये हैं, वे भौतिक शक्तियों के रूप में एक सर्वोपरि सत्ता का प्रतिनिधित्व करते हैं। अतएव स्पष्ट है कि प्रकृति पूजा वेदकालीन धार्मिक जीवन का आदिस्रोत है। मनुष्य ने जब प्राचीन काल में सर्वप्रथम प्रकृति के दर्शन किये, तब वह उसके विभिन्न रूपों को देख प्रकृति में विभिन्न तरह की दैवीय शक्तियों की कल्पना की और यहीं से बहुदेवतावाद का प्रारंभ हुआ। प्राचीन आर्यों ने अपने सांस्कृतिक विकास के प्रारंभ से ही अनेकत्व में एकत्व के दर्शन किये। इसी भाव से प्रेरित होकर वैदिक ऋषियों ने विभिन्न देवताओं की पृष्ठभूमि में एक सर्वोपरि व सर्वनियामक सत्ता की कल्पना की और उन्होंने '**,d Infoik cgl/kk onfr**' अर्थात् एक ईश्वर को विद्वान नाना प्रकार से वर्णित करते हैं द्वारा एकेश्वरवाद का सूत्रपात किया गया। इसके अतिरिक्त वैदिक धर्म में यज्ञों के कर्मकाण्ड पर भी विशेष बल दिया गया है।

or'eku le; e! /ke! dh fLFkfr

आज की परिस्थिति में मानव समाज व अलग–अलग देशों में विभिन्न तरह के धर्मों का प्रचलन हैं और उनके अपने नीति–नियम है। इन धर्मों में कुछ ऐसे भी नियम हैं जो अवांछनीय हैं और जिनसे किसी का हित साधन न होकर नुकसान ही होता है। कुछ धर्मों के अनुयायी अपने धर्म के प्रति इतने कट्टर होते हैं कि दूसरों के धर्मों को हेय दृष्टि से देखते हैं और अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। इस तरह आज की परिस्थिति में विभिन्न धर्मों में आपस में मतभेद व स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की भावना निहित है और यह भावना निश्चित रूप से धर्मों की नहीं बल्कि उनका पालन करने वाले अनुयायियों की है।

आज धर्म का वास्तविक स्वरूप विलुप्त हो गया है, धर्म मात्र कर्मकाण्ड बनकर रह गया है। धर्म के नाम पर सर्वत्र अंधविश्वास फैला हुआ है। महावीर सरन जैन का अभिमत है कि आज धर्म के जिस रूप को प्रचारित एवं व्याख्यायित किया जा रहा है उससे बचने की जरूरत है। ब्रैडले ने कहा है कि अधिकांश व्यक्ति धर्म के तत्व को गहराई से न जानने के कारण ही इसकी उपेक्षा सी करते हैं। धर्म को कुछ कर्मकाण्डों का पर्याय भर मान लिया गया है फलतः वे जिन क्रिया–कृत्यों को ग्रहण करते हैं उसी में सीमित होकर रह जाते हैं अथवा यो कहें कि रूढ़िग्रस्त होकर धर्म के मार्ग से भटक जाते हैं। धर्म के वास्तविक स्वरूप से दूर होने के कारण आज राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में अनेकों समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। इस शोध पत्र में कतिपय समस्याओं यथा– सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद का उल्लेख किया जा रहा है।

lEçnk;okn

धर्म शाश्वत है। मानवीय गरिमा के अनुरूप अपनाई जाने वाली धर्म धारणा ऐसी है कि सार्वभौम एवं अपरिवर्तनीय कहा जा सके, जबकि सम्प्रदायों में परिवर्तन, परिशोधन का उपक्रम सदा से चला और सदा चलता रहेगा (ब्रह्मवर्चस, 1998)।

सम्प्रदायों के बीच ऐसा दुराग्रह पाया जाता है कि हमारी मान्यताएँ और प्रथा परंपराएँ ही सही हैं। इसके अतिरिक्त और सब झूठे हैं। अपनी धर्म की पुस्तक में जो कुछ कहा गया है वही ईश्वर का वचन है और जिसकी मान्यता इससे

भिन्न है वे सभी नास्तिक हैं और इस योग्य हैं कि उन्हें प्रताड़ित किया जाये। ये सम्प्रदायों के दुराग्रह हैं इसी के कारण धर्म के नाम पर मार–काट व खून–खराबा होता है और घृणा, द्वेष व परायेपन की भावना फैलती है (ब्रह्मवर्चस,1998)। पिछले हजारों वर्षों से इन्ही दुराग्रहों के कारण यह धरती मनुष्य के रक्त से लाल होती चली आ रही है। साम्प्रदायिक संघर्ष और धर्म के नाम पर होने वाले नरमेध ने संसार के संपूर्ण मानव समुदाय को बुरी तरह से त्रस्त कर दिया है। विकसित देशों में अब धर्म के नाम पर रक्तपात नहीं होता किन्तु इसके स्थान पर वर्गवाद और रंगवाद के आधार पर संघर्ष चल रहा है। साथ ही संसार में राष्ट्रवाद का ऐसा उन्माद फैल गया है जिसके कारण प्रगतिशील और पिछड़े सभी राष्ट्र के लोग एक–दूसरे के दुश्मन बन बैठे हैं (ब्रह्मवर्चस, 1998)।

वैदिक ग्रंथों के अनुसार धर्म वह है जो राष्ट्र व उसके समाज को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाये। देश व काल के परिवर्तन से परिस्थितियों में भी अंतर आता है। उनके अनुरूप नयी रीति–नीति निर्धारित करनी पड़ती है तथा उन आचार–सूत्रों में भी परिवर्तन करना पड़ता है। विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति ऐसी ही संधिबेला में हुई। भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी उनकी विभिन्नता का कारण बनीं, पर जितने भी सम्प्रदाय बनें हैं उनके स्वरूप में पारस्परिक भिन्नता होते हुए भी एक ही लक्ष्य है–मनुष्य को पूर्णता प्राप्ति की ओर प्रेरित करना, उस पथ पर अग्रसर करना (ब्रह्मवर्चस, 1998)। सम्प्रदाय परिवर्तनशील हैं। अपरिवर्तनीय, शाश्वत तो धर्म के वे सिद्धांत हैं जो हर काल में एक जैसे रहते हैं तथा सभी धर्म सम्प्रदायों में एक जैसे पाये जाते हैं। सम्प्रदायों का विशालकाय कलेवर इसलिए चुना गया होता है कि उच्चस्तरीय सिद्धांतों के परिपोषण में अपना योगदान दें। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, ताओ, कन्फ्यूशियस जैसे कितने ही धर्म सम्प्रदाय संसार में हैं तथा उनकी समाज के बहुमुखी विकास में किसी न किसी समय में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। परंतु सम्प्रदाय जब उसमें निहित धर्म के मूल उद्देश्यों की उपेक्षा–अवहेलना करने लगते हैं या उन्हें समझ नहीं पाते तो साम्प्रदायिक मतभेदों, मनमुटावों विवादों एवं विग्रहों का सूत्रपात होता है।

सम्प्रदायवाद एक प्रकार की धार्मिक अंधभक्ति है। यह वह भावना है जो एक धर्म को दूसरे धर्म से अलग करती है। सम्प्रदायवाद को व्यक्ति की संकीर्णता, कट्टरता व दुराग्रह कहा जा सकता है। वास्तव में सम्प्रदायवाद एक मनोवृत्ति है जिससे विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति अपने सीमित हितों और अधिकारों की रक्षा के लिए दूसरे व्यक्तियों के हितों और अधिकारों की परवाह नहीं करते हैं। सम्प्रदायवाद ऐसी भावना है जो देश के हितों की उपेक्षा करके साम्प्रदायिक हितों को महत्व प्रदान करती है (मुकर्जी एवं अग्रवाल, 2005)।

सम्प्रदायवाद के दुष्परिणाम& पारस्परिक द्वेष, आर्थिक हानि, प्राण हानि, राजनीतिक अस्थिरता, राष्ट्रीय एकता में बाधा, राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा, असुरक्षा की भावना, पारिवारिक विघटन।

tkfrokn

मनुष्य समाज में ऊँच–नीच का भेद सर्वत्र पाया जाता है परंतु हमारे देश के समान जातिभेद संसार में और कहीं भी नहीं है। दूसरें देशों में सब प्रकार के जाति भेदों के बीच भी उनका धर्म विभिन्न जातियों में एकता का भाव उत्पन्न करता है, परंतु हमारे देश में जातिभेद की दीवार धर्म के आधार पर खड़ी की गई है। भारत में जातिवाद का आरंभ लगभग छठी शताब्दी में हुआ।

प्राचीनकाल में जिस मर्यादा एवं अनुशासन से समाज का नियमन एवं संचालन होता था उसे वर्ण व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। प्राचीन समय में पूरा समाज चार वर्णों में विभाजित था–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ऋग्वेद का पुरूषसूक्त हमें बताता है कि ब्रह्मा ने विराट पुरूष के शरीर को चार वर्णों के रूप में नामांकित किया अर्थात् उस विराट पुरुष का मुख ब्राह्मण था, क्षत्रिय दोनों भुजाएँ थीं, वैश्य दोनों जंघाएँ थीं और शूद्र–वर्ण दोनों पैर थे (ऋग्वेद, मुद्गलोपनिषद– पुरुषसूक्त/12)। मानवीय व्यक्तित्वों एवं उनकी अभिरूचियों की भिन्नता को ध्यानगत रखते हुए मनीषियों ने वर्णों के आधार पर व्यक्तियों का विभाजन किया था ताकि समाज के सभी कार्य ठीक ढंग से चलते रह सकें। पीढ़ी दर पीढ़ी पैतृक व्यवसाय को अपनाये जाने का कारण सामाजिक दबाव नहीं वरन् वे सूक्ष्म संस्कार होते थे, जो उन्हें सहज ही अपने वर्ण से मिलते थे। परंतु कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते थे, जिनके संस्कार और अभिरूचि अपने वर्ण से भिन्न स्तर के होते थे। फलस्वरूप वे उनकी प्रेरणा से अपने से भिन्न स्तर का पेशा भी अपना लेते थे। वर्ण व्यवस्था की वैज्ञानिकता और उपयोगिता विकृतियों के घुस आने से तब समाप्त हो गयी जिस दिन वर्ण की धारणा तुलनात्मक हो गई कि कौन बड़ा कौन छोटा? जो व्यवस्था कर्म पर अवलंबित थी, वह जन्म पर आधारित हो गयी। यह माना जाने लगा कि जो जिस वर्ण में जन्म लेगा वह उसी वर्ण का माना जायेगा भले ही उसके गुण, कर्म, स्वभाव अन्य वर्ण के अनुरूप क्यों न हों। ब्राह्मण वर्ण में जन्म लेने पर ब्राह्मण और शूद्र वर्ण में जन्म लेने पर शूद्र। भगवान श्रीकृष्ण ने भी इस संबंध में यही कहा है– गुण और कर्मों के अनुसार चारों वर्णों की सृष्टि की गयी है न कि जन्म के अनुसार

(श्रीमद्भगवद्गीता–4/13)। महाभारत में इस कथन को और भी स्पष्ट करते हुए कहा गया है– हे युधिष्ठिर! पहले एक ही वर्ण था। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार पीछे उसके चार भेद किये गये (महाभारत–42/188)। अन्यत्र भी कहा गया है–लोगों की संतान भिन्न–भिन्न स्वभावों की होती हैं। अतः ऋषियों के अनुसार केवल आचरण ही जाति को निर्धारित करने वाला है (महाभारत–180/32/33)। परंतु कालांतर में वर्ण व्यवस्था का सही स्वरूप व उद्देश्य समाप्त हो गया तथा यह माना जाने लगा कि वर्ण का संबंध कर्म से नहीं जन्म से है। इस मान्यता ने जातिवाद की समस्या को जन्म दिया।

जातिवाद एक जाति के सदस्यों की वह भावना है जो अपनी जाति के हित के सम्मुख अन्य जातियों के सामान्य हितों की अवहेलना और प्रायः हनन करने को प्रेरित करती है। किस प्रकार केवल अपनी जाति का ही कल्याण और प्रगति हो, यही चिंता उन्हें देश या समाज या अन्य जातियों के सामान्य हितों का ध्यान नहीं रखने देती है। मानव भावनाओं का यह संकुचित रूप ही जातिवाद है। ज्यों–ज्यों शिक्षा का प्रचार हुआ, रूढ़ियों और जाति प्रथा को समाप्त हो जाना चाहिए था, परंतु जातिगत व्यवस्था न टूटी न बिखरी और न ही सुधरी, बस समाज बिखर गया और राष्ट्रीय भावना गौण हो गई। लोकतंत्र की छाती पर जातिवादी शैतान सवार हो गया, जिसे वोट की राजनीति व व्यक्तिगत स्वार्थ ने दूध पिलाया।

जातिवाद के दुष्परिणाम& प्रजातंत्र के लिए घातक, औद्योगिक कुशलता में बाधक,. नैतिक पतन, राष्ट्रीयता के विकास में बाधक, गतिशीलता में बाधक, भाई–भतीजावाद को प्रोत्साहन, सामाजिक तनाव, धार्मिक सार्वभौमिकता का ह्रास, शिल्प कारीगरी का विकास अवरूद्ध।

{k=okn

क्षेत्रवाद एक बड़ी विकट सामाजिक समस्या है। भारत में क्षेत्रवाद की समस्या ने 1984 के लगभग से गंभीर रूप लिया। पृथ्वी एक है, उस पर निवास करने वाले सभी मनुष्य पृथ्वी पुत्र है। धरती के सभी भागों में सभी को समान रूप से आवागमन की, बसने की सुविधा रहनी चाहिए। यह औचित्य है, यही न्याय पर जब गिरोह बनाकर कुछ लोग पृथ्वी के किसी भाग पर अपना कब्जा जमा लेते हैं और वहाँ की सुविधाओं से मात्र कब्जा जमाने वाले लोग ही लाभान्वित होते हैं, अन्यत्र रहने वालों को वहाँ पहुँचने की, वहाँ की सुविधाओं से लाभ उठाने की मनाही करते हैं तो समझना चाहिए कि क्षेत्रीय कट्टरता को अपनाया जा रहा है। पृथ्वी पर अनेक क्षेत्रों में घनी आबादी है और अनेक क्षेत्र विरल पड़े हैं। विरल क्षेत्रों के लोग अधिक जमीन का अधिक लाभ उठाते हैं जबकि घनी आबादी वाले उतने ही सीमित दायरे में किसी प्रकार मुश्किल से गुजारा कर पाते हैं। यदि यह संकीर्णता न रही होती तो समूची मनुष्य जाति को पृथ्वी के समस्त भागों का समान लाभ मिला होता (ब्रह्मवर्चस, 1998)। क्षेत्रवाद का अनौचित्य समाज में सही वातावरण नहीं बनने दे रहा है। विश्व एक होना चाहिए था किंतु उसका विखण्डन होकर देशों के नाम पर क्षेत्रवाद पनपा और अनौचित्य की फिलॉसफी चली (ब्रह्मवर्चस,1998)। क्षेत्रवाद का आज जो उग्र रूप प्रकट हुआ है वह राष्ट्रीय एकता की समस्या को और गंभीर बना देता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश विभाजन के फलस्वरूप भारत की अखण्डता पर कुठाराघात हुआ था वह क्षेत्रवाद के कारण और भी भयंकर हो गया है। इस क्षेत्रीयता की भावना का जन–जीवन में जड़ पकड़ने के कारण आज हमारा यह देश केवल हिंदुस्तान और पाकिस्तान में ही नहीं अपितु एकाधिक क्षेत्रों में बँट गया है (मुकर्जी, 1989)। इसी क्षेत्रवाद की भावना के कारण देश के विभिन्न भागों में पृथक्करण की आवाजें उठती रहती हैं (नाटाणी एवं शर्मा, 2000)।

क्षेत्रीयता का अर्थ उन आदर्श, व्यवहार, विचार तथा कार्यक्रमों से होता है जो कि एक क्षेत्र विशेष के लोगों के मन में मिथ्या गौरव व श्रेष्ठता की भावना को पनपाते हैं और उसी आधार पर वे अपने लिए समस्त राजनीतिक तथा आर्थिक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए इस भाँति तत्पर हो जाते हैं कि विस्तृत राष्ट्र के स्वार्थों तथा राष्ट्रीय एकता की आवश्यकताओं को भी वे भुला देते हैं। क्षेत्रीयता का यह रूप उस क्षेत्र के लोगों में यह भावना भर देता है कि उनकी भाषा, संस्कृति, इतिहास व सामाजिक परंपरायें ही श्रेष्ठ हैं और इसीलिए क्षेत्र के सर्वांगीण विकास के लिए हर संभावित सुविधाओं का होना आवश्यक है तथा वे सुविधायें उन्हें अधिकारी के रूप में ही उपलब्ध होनी चाहियें। माँग यह होती है कि उस क्षेत्र का प्रशासनिक अधिकार अधिकाधिक प्राप्त हों, उनकी समस्याओं पर पहले ध्यान दिया जाये, अपने राज्य की नौकरियों में विशेष आरक्षण दिया जाये तथा समस्त राष्ट्रीय विषयों के संबंध में उनके महत्व को अवश्य ही स्वीकार किया जाये। इन सबके लिए यदि उन्हें संपूर्ण राष्ट्र से अपना नाता भी ढीला करना पड़े तो उसके लिए भी वे तैयार रहते है। इस अर्थ में क्षेत्रीयता पृथकता की समर्थक बन जाती है (मुकर्जी, 1989)।

क्षेत्रवाद के दुष्परिणाम& विभिन्न क्षेत्रों के बीच संघर्ष तथा तनाव, राज्य तथा केंद्रीय सरकार के बीच संबंधों का विकृत होना, स्वार्थी नेतृत्व व संगठन का विकास, भाषा की

समस्या का अधिक जटिल होना, राष्ट्रीय एकता को चुनौती (मुकर्जी एवं अग्रवाल, 2005)।

vkrdokn

आज आतंकवाद भारत के लिए ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व के लिए एक गंभीर समस्या है। समाचार माध्यम आतंकवाद से संबंधित घटनाओं से भरे रहते है। मानव ही मानव का शत्रु बन गया है। अपनी बात को मनवाने का यह विकृत तरीका है जिसमें आदमी जान लेने और देने पर तुल जाता है। उन्माद का यह चरम रूप है जहाँ मानव स्वेच्छा से आत्मघाती बम के रूप में परिवर्तित होकर अपने ही साथियों की जान केवल इसलिए लेना चाहता है कि वे उसके चिंतन के अनुरूप कार्य नहीं करते।

आतंकवाद वह विचारधारा या कार्यपद्धति है जिसके अंतर्गत एक समूह या संगठन द्वारा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु जनहित या राष्ट्रीय हित को तनिक भी ध्यान न रख अवांछित साधनों–बल प्रयोग, शस्त्रास्त्रों, हिंसा आदि का प्रयोग किया जाता है। अपनी बात को मनवाने के लिए वैधानिक एवं लोकतंत्रीय साधनों में आतंकवादियों की आस्था नहीं होती। वे हथियारों और हिंसा का सहारा लेकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं। वे निर्दोष लोगों की हत्या और सार्वजनिक संपत्ति का विनाश करने में भी नहीं हिचकते।

आतंकवाद के दुष्परिणाम– मानवोचित गुणों का नाश, जनमानस में भय और असुरक्षा की भावना, देश की समृद्धि में बाधक, आर्थिक हानि, प्राण हानि, पारिवारिक विघटन, विश्व शांति में बाधक (मुकर्जी एवं अग्रवाल, 2005)।

bu jk"V0;kih leL;kvk d lek/kku e ofnd /ke dh fpUru nf"V

वर्तमान काल में जबकि सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद आदि समस्याएँ देश के सामने नित नये संकट उत्पन्न कर रही हैं इनका धार्मिक समाधान सद्भाव व सामंजस्य में है।

/kkfed lnHkko

धार्मिक सद्भाव या धार्मिक सहिष्णुता का अर्थ है विभिन्न धर्मों के प्रति आदर एवं प्रेम के भाव का प्रदर्शन करना। मानव की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह अपने धर्म को श्रेष्ठ तथा दूसरे के धर्म को तुच्छ समझता है, जिसके फलस्वरूप धर्म को लेकर संघर्ष होते हैं। धार्मिक सहिष्णुता में इस संघर्ष को रोकने के लिए विभिन्न धर्मों के प्रति सहनशीलता के दृष्टिकोण को प्रश्रय देने का आदेश निहित है (सिन्हा, 2009)। धार्मिक सहिष्णुता से अभिप्राय है कि किसी भी अपने से भिन्न धर्मों के अनुयायियों को नहीं सताना और उन्हें अपने धर्मों का पालन करने में पूरी छूट देना (मसीह, 2001)।

धार्मिक सहिष्णुता धर्म की आध्यात्मिकता की परिपक्वता, बौद्धिक व्यापकता तथा उदारता का परिचायक होती है। धार्मिक सापेक्षता के ज्ञान के साथ यह भी प्रतीत होता है कि सभी धर्मों में कुछ न कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो सभी धर्मों के अनुयायियों को आध्यात्मिक लाभ पहुँचा सकते हैं। धार्मिक सहिष्णुता के विकास से आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि का विकास होता है। यह तो मनुष्य की हठधर्मिता और ज्यादती है कि वह अपने ही रास्ते को सही माने और दूसरे रास्ते पर चलने वालों पर पत्थर बरसाये, उन पर जुल्म करे। इसलिए सच्चा धार्मिक पुरूष वही है जिसमें सहिष्णुता है, जो दूसरे धर्मों का आदर करता है और उनसे भी अच्छी बातें ग्रहण करता है दूसरे धर्मों में दोष निकालना, उन्हें अपूर्ण कहना उचित नहीं है।

वस्तुतः तथ्य यह है कि मनुष्य को धर्म के मूल तत्व का सही ज्ञान होना आवश्यक है। सभी धर्म किसी न किसी रूप में सत्य से संबंधित हैं। सभी धर्म मानवीय मूल्यों के संरक्षण पर बल देते हैं। कोई धर्म मानव और मानव के मध्य शत्रुता रखने का आदेश नहीं देता है (सिन्हा, 2009)। यदि मनुष्य धर्म के सही स्वरूप को वैदिक धर्म को अंगीकार कर ले तो वह कभी साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। इस प्रकार धार्मिक सहिष्णुता, सद्भाव से साम्प्रदायिकता का समाधान संभव है।

वैदिक युग में यद्यपि लोग अलग–अलग देवताओं की उपासना करते थे तथापि उन विभिन्न नामों से एकमात्र परमेश्वर की ही भक्ति की जाती थी वे कहते थे **',d lnfoik cg/kk onfr*** अर्थात् उनमें धार्मिक सहिष्णुता का भाव पूर्णतया व्याप्त था। वर्तमान समय में भी यदि मनुष्य अलग–अलग सम्प्रदायों में ईश्वर के अनेक रूपों की उपासना को उस एक परम परमेश्वर की ही उपासना माने तो अनेक समस्याओं का समाधान संभव है।

आज इन राष्ट्रव्यापी चुनौतियों के समाधान के लिए धार्मिक सद्भाव के साथ–साथ धार्मिक सामंजस्य भी आवश्यक है।

/kkfed lkeatL;

समस्त मनुष्य जाति एक ही पिता की संतान है। सभी की माता धरती है। सभी परस्पर स्वजन और कुटुंबी हैं। इस कौटुम्बिक एकता को बनाये रखने में ही मनुष्यता है। वैदिक धर्म मनुष्य को '**vkReoRk loHkr"k***' व '**olq/ko dVqcde**' के उच्च भावों का आदर्श ग्रहण करने की प्रेरणा प्रदान करता

है वह प्राणी मात्र को इसी मान्यता को स्वीकार करने पर बल देता है और वस्तुतः इस मान्यता में उपरोक्त समस्याओं का निराकरण संभव है। वैदिक धर्म ने मनुष्य को सदैव एकता व समता का ही मार्ग दिखाया है। जब कोई मनुष्य वैदिक धर्म के इन आदर्शों को अपने जीवन में समाहित करेगा तब स्वतः ये समस्याएँ समाप्त हो जायेगी। यथा–जब मनुष्य 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अर्थात् समस्त प्राणियों में स्वयं को देखेगा एवं 'वसुधैव कुटुम्बकुम्' अर्थात् संपूर्ण वसुधा को अपना कुटुंब मानेगा तो कैसे वह अन्य व्यक्तियों के प्रति धर्म के आधार पर या जाति के आधार पर या क्षेत्र के या अन्य किसी आधार पर उससे द्वेष–दुर्भाव कर सकेगा या उसके प्रति किसी भी प्रकार की हिंसा कर सकेगा। इन भावों को पुष्ट–प्रवण करने के अनेकों उदाहरण वैदिक साहित्य में पर्याप्त परिमाण में मिलते हैं। यथा– अथर्ववेद में कहा गया है–''तुम सब एक विचार से रहो, परस्पर विरोध करके एक दूसरे से दूर न हो जाओ। एक इच्छा की पूर्ति के लिए प्रयत्न करने वाली सब प्रजाओं को सब विद्वान एकता के विचार से संयुक्त करें'' (अथर्ववेद–3/8/4)। अथर्ववेद के ही एक अन्य उदाहरण के भी कुछ ऐसे ही भाव हैं–''तुम्हारे मन एक हों, तुम्हारे कर्म एकता के लिए हों, तुम्हारें संकल्प एक हों जिससे तुम संघ शक्ति से युक्त हो जाओगे। जो ये आपस में विरोध करने वाले हैं उन सबको हम एक विचार से एकत्रकर झुका देते हैं'' (अथर्ववेद–3/8/5)। इसी प्रकार ऋग्वेद के अंतिम अध्याय के अंत की ऋचाओं में धार्मिक सामंजस्य का भाव स्पष्ट रूप से मिलता है–'' हे मनुष्य आप लोग परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो, परस्पर मिलकर प्रेम से बातचीत करो। आप लोगों के चित्त एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। आप लोग ज्ञानसंपन्न होकर सेवनीय प्रभु की उपासना करें'' (ऋग्वेद–8/49/2)। वैदिक परंपरा के पोषक पं. श्रीराम शर्मा इस संदर्भ में कहते हैं–''वस्तुतः मनुष्य और मनुष्य के बीच पनपने वाले विभेद क्रम ही समस्त विग्रहों का मूल हैं। यदि एकता की, आत्मीयता की भावना विकसित हो, सब अपने दिखायी पड़े तो व्यक्तिगत संकीर्ण स्वार्थपरता का अंत होने में देर न लगे''(ब्रह्मवर्चस,1998)। वस्तुतः संकीर्ण स्वार्थपरक भावनाओं का रूपांतरण 'आत्मवत् सर्वभूतेष' व 'वसुधैव कुटुंबकम्' के उदात्त भावों का अवलंबन व ग्रहण करने पर ही संभव है। इन्हीं में सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद जैसी समस्याओं का समाधान निहित है।

fu"d"k

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद जैसी राष्ट्रव्यापी विवादास्पद विकट समस्याएँ मनुष्य के संकीर्ण विचारों व क्षुद्र भावनाओं की देन है। यदि मनुष्य सच्चे अर्थों में वैदिक धर्म की चिन्तन दृष्टि व धर्म के मूल लक्षणों को अपनाता है, तभी संपूर्ण राष्ट्र में फैली इन समस्याओं का निदान संभव है। धर्म का अस्तित्व ही मानवीय संवेदना के विकास व उसकी चेतना के परिष्कार के लिए है। यदि वैदिक धर्म में निहित दूरदर्शिता पूर्ण चिन्तन दृष्टि में ध्यान दिया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि सारे विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में समझने, विकसित करने व पालन–पोषण करने का भाव वैदिक धर्म की चिन्तन दृष्टि (**ol/ko dVEcde**) में है। '**vkReor loHkr"k**' की भावना से ही मानवीय संवेदना का विकास होता है जो मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाती है अन्यथा आज समाज में मनुष्यता के नाम पर मनुष्य ही नहीं है, सभी का जीवनस्तर एवं चिन्तन गिर गया है। अतः यदि हमें अपने देश में व्याप्त इन गंभीर समस्याओं से निजात चाहिए तो वैदिक धर्म की चिन्तन दृष्टि को अपनाना होगा और अपनी विचार श्रेणी को परिष्कृत व उत्कृष्ट बनाते हुए अपनी संवेदना का विकास करना होगा।

शिखा, पी–एच.डी., असिस्टेंट प्रोफेसर, मानवीय चेतना एवं योग विज्ञान विभाग; रीना बाजपेयी, पी–एच.डी., असिस्टेंट प्रोफेसर, स्कूल ऑफ योग एण्ड हेल्थ, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार, भारत।

lnHk& lph

अर्तिस्तुहुमिति उणाम् इति मन्। **fl)kr dkenh&1@139**

अयंधर्मः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य धर्मस्यसर्वाणि भूतानानि मधु यश्चायमस्मिन् धर्मतेजोमयोऽमृतमयः पुरूषो यश्चायमध्यात्मं धार्मस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरूषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मदं सर्वम्।। **¼ognkj.;d mifu"kn&2@5@11½**

अतो धर्माणि धारयन्।। **¼_Xon& 1@22@18½**

अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि।।
¼vFkoZon&3@8@5½

अस्मै कामायोप कामिनीर्विश्वे वो देवा उपसंयन्तु।।
¼vFkoZon&3@8@4½

ओम् ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।। **¼_Xon] enxykifu"kn& i#"klDr@12½**

इहेदसाथ न परो गमाथेर्यो गोपाः पुष्टपतिर्व आजत्। एक वर्णमिदं पूर्व विश्वमासीद युधिष्ठिरः। कर्मक्रियाविभेदेन चातुर्वण्य प्रतिष्ठितः।।
egkHkkjr&42@188

तस्मात् शीलं प्रधानेष्टं विदुर्येतत्वदर्शिनः।।
egkHkkjr&180@32@33

देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।। **¼_Xon&8@49@2½**

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रयनिग्रहः। धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। ¼rfRrjh; vkj.;d& 10@63½

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। ¼euLefr 6@91½

प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्य शवसानाय साम। सं वो मनांसि येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चंतों अङिरसो गा अविंदन्।। ¼_Xosn& 1@62@2½

सं व्रता समाकूतीर्नमासि। सङ्च्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। सत्यं वद। धर्मं चर। ¼rfRRkjh; mifu'kn& 1@11@1½

सत्यधर्माय दृष्ट्ये। ¼b'kkokL;ksifu"kn&15½

सर्वेसर्वास्वपत्यानि जनयंति सदा नराः। त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। समाशँसते धर्मेण यथा राज्ञैव यो वै धर्म सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदंत माहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदंत सत्यं वदतीत्येतद्धयेवै तदुभयं भवति।। ¼ognkj.;d mifu"kn&1@4@14½

त्रयो धर्मस्कंधा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यंतमात्मानआचार्यकुलेऽवसादयन्सव एते पुण्यलोका भवंति ब्रह्मसँस्थोऽमृतत्वमेति।। NkanksX; mifu'kn&2@23@1

चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।। ¼JhenHkxonxhrk&4@13½

d|yJ"B] vkxe ¼2008½ *संस्कृति के प्रमुख महाकाव्यों में धर्म।* आगरा : बॉके बिहारी प्रकाशन, पृ. 11, 12

ukVk.kh] i- ukjk;.k ,o 'kek] iKk ¼2000½ *भारत में सामाजिक समस्याएँ।* जयपुर : पोइंटर पब्लिशर्स, पृ. 329

e|d th] johnukFk ,o vxoky] Hkjr ¼2005½ *सामाजिक समस्याएँ।* दिल्ली : विवेक प्रकाशन, पृ. 78, 79, 151, 164, 165, 423

e|d th] johnukFk ¼1989½ *भारतीय समाज व संस्कृति।* दिल्ली : विवेक प्रकाशन, पृ. 422, 423

e lhg] ;kdc ¼2001½ *सामान्य धर्मदर्शन एवं दार्शनिक विश्लेषण।* दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 297

cãop l ¼1998½ *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय : भव्य समाज का अभिनव निर्माण (खण्ड– 46)*। मथुराः अखण्ड ज्योति संस्थान, पृ. 2.32, 2.33, 4.8

cãop l ¼1998½ *पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय : धर्म तत्व का दर्शन और मर्म (खण्ड– 53)*। मथुरा : अखण्ड ज्योति संस्थान, पृ. 6.24, 6.26, 6.29, 6.29, 6.33, 6.39

f lUgk] gjsn i lkn ¼2009½ *धर्म दर्शन की रूपरेखा।* दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 320